E-ISSN: 2664-603X
P-ISSN: 2664-6021
Impact Factor (RJIF): 5.86
IJPSG 2024; 6(1): 387-391
www.journalofpoliticalscience.com
Received: 05-03-2024
Accepted: 09-04-2024

डॉ. महेश कुमार
शिक्षक, इन्टरस्तरीय स्कूल भवनपुरा खरीक, भागलपुर, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ. महेश कुमार
शिक्षक, इन्टरस्तरीय स्कूल भवनपुरा खरीक, भागलपुर, बिहार, भारत

डॉ. भीमराव अंबेडकर का आर्थिक दर्शन और उसकी समकालीन प्रासंगिकता

डॉ. महेश कुमार

DOI: https://www.doi.org/10.33545/26646021.2024.v6.i1e.644

सारांश
डॉ. भीमराव अंबेडकर को भारतीय समाज में एक महान सामाजिक सुधारक, संविधान निर्माता और दलितों के अधिकारों के सशक्त समर्थक के रूप में सम्मानित किया जाता है। हालांकि, उनके योगदान का दायरा केवल सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं था, बल्कि उनका आर्थिक चिंतन भी अत्यंत गहन और दूरदर्शी था। अंबेडकर ने भारतीय समाज की जटिल आर्थिक असमानताओं को गहरे स्तर पर समझा और उनका विश्लेषण किया। उनका मानना था कि भारतीय समाज में आर्थिक असमानता और शोषण के मूल कारण जातिवाद, असमान वितरण व्यवस्था और श्रमिक वर्ग के शोषण में निहित हैं। उन्होंने इस तथ्य को पहचानते हुए आर्थिक विचारों को केवल आर्थिक प्रगति तक सीमित न रखते हुए उसे सामाजिक न्याय और समग्र मानवता से जोड़ा। अंबेडकर का दृष्टिकोण था कि भारतीय समाज में आर्थिक विकास तभी संभव है जब उसका लाभ हर वर्ग और समुदाय तक पहुंचे। उन्होंने संसाधनों के समान वितरण, श्रमिकों के अधिकारों की सुरक्षा और आर्थिक असमानताओं को समाप्त करने की दिशा में कई विचार प्रस्तुत किए। उनके अनुसार, आर्थिक विकास केवल उत्पादन की वृद्धि तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि यह सुनिश्चित करना चाहिए कि इसका लाभ समाज के निचले वर्गों तक पहुंचे, ताकि हर व्यक्ति को अपनी मेहनत का उचित पारिश्रमिक मिल सके। उनके लिए, समाज में आर्थिक समता और सामाजिक न्याय की प्राप्ति के बिना कोई भी विकास अधूरा था।

उन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त जातिवाद और उसकी आर्थिक प्रणाली को सशक्त रूप से चुनौती दी, जो दलितों और अन्य वंचित वर्गों को शोषण का शिकार बनाती थी। अंबेडकर ने इस शोषण को समाप्त करने के लिए श्रमिकों के अधिकारों को मान्यता दी और उनके लिए बेहतर कामकाजी परिस्थितियाँ सुनिश्चित करने के लिए कई उपायों का प्रस्ताव किया। उनका मानना था कि आर्थिक समता और सामाजिक न्याय एक-दूसरे से गहरे रूप से जुड़े हुए हैं, और बिना इन्हें सुनिश्चित किए हुए कोई भी समृद्धि अस्थायी और अस्वीकार्य होगी। आज जब भारत बेरोजगारी, आर्थिक असमानता, श्रमिक असुरक्षा और नवउदारवादी नीतियों के प्रभाव से जूझ रहा है, डॉ. अंबेडकर के आर्थिक विचार अत्यंत प्रासंगिक हो गए हैं। बेरोजगारी की बढ़ती समस्या, मजदूरी में असमानता, और बड़े-बड़े निगमों के बढ़ते लाभ के बीच श्रमिक वर्ग की स्थिति में गिरावट अंबेडकर के दृष्टिकोण की अनिवार्यता को और भी स्पष्ट करती है। उनके विचार हमें यह याद दिलाते हैं कि एक समृद्ध और न्यायपूर्ण समाज वही है, जिसमें सभी वर्गों को समान अवसर और अधिकार मिलें और हर व्यक्ति को अपनी मेहनत का उचित फल मिले। उनका मानना था कि जब तक समाज के सभी वर्गों के बीच आर्थिक और सामाजिक असमानताएँ दूर नहीं होतीं, तब तक कोई भी आर्थिक प्रगति वास्तविक नहीं हो सकती।

उनकी नीतियाँ और दृष्टिकोण आज भी हमें प्रेरित करते हैं कि हम एक समावेशी और शोषणमुक्त समाज की ओर बढ़ें, जहाँ प्रत्येक नागरिक को समान अवसर मिलें और किसी भी व्यक्ति को उसके जन्म, जाति या सामाजिक स्थिति के आधार पर भेदभाव का सामना न करना पड़े। उनका आर्थिक दृष्टिकोण हमें यह समझने में मदद करता है कि एक सशक्त अर्थव्यवस्था तब ही संभव है, जब वह हर वर्ग के लिए न्यायपूर्ण हो, और उसकी प्रगति का लाभ सभी तक पहुंचे।

मूलशब्दः आर्थिक दर्शन, आर्थिक समता, सामाजिक न्याय, श्रमिक अधिकार, आर्थिक शोषण, समावेशी विकास, बेरोजगारी.

प्रस्तावना
डॉ. भीमराव अंबेडकर का आर्थिक चिंतन केवल अर्थव्यवस्था की तकनीकी समझ तक सीमित नहीं था, बल्कि यह भारतीय समाज की गहरी सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना और उसमें व्याप्त असमानताओं की गंभीर पड़ताल पर आधारित था। उन्होंने आर्थिक विचारों को सामाजिक न्याय, मानवीय गरिमा और शोषण से मुक्ति के माध्यम के रूप में देखा। उनका आर्थिक चिंतन मुख्य रूप से उन वंचित वर्गों के हित में केंद्रित था, जो सदियों से जातीय, सामाजिक और आर्थिक शोषण का शिकार रहे-जैसे

दलित, मजदूर, किसान और महिलाएं। उनका स्पष्ट मानना था कि जब तक समाज के सबसे कमजोर वर्गों को आर्थिक स्वतंत्रता और समान अवसर नहीं मिलते, तब तक कोई भी समाज सच्ची प्रगति नहीं कर सकता। [1] डॉ. अंबेडकर ने अपनी उच्च शिक्षा कोलंबिया विश्वविद्यालय (अमेरिका) और लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स (इंग्लैंड) से प्राप्त की, जहाँ उन्होंने अर्थशास्त्र में एम. ए. पीएच.डी. और डी.एससी. की उपाधियाँ अर्जित कीं। उनकी पीएचडी थीसिस *"ब्रिटिश भारत में प्रांतीय वित्त का विकास"* ब्रिटिश शासनकाल में भारतीय वित्तीय ढांचे की आलोचनात्मक व्याख्या थी। उनकी डी.एससी. थीसिस *"रुपये की समस्या: इसकी उत्पत्ति और उसका समाधान"* में उन्होंने भारतीय मुद्रा की समस्याओं और समाधान का विस्तृत विश्लेषण किया। इन शोधों से यह स्पष्ट होता है कि अंबेडकर की आर्थिक दृष्टि केवल सैद्धांतिक नहीं, बल्कि व्यावहारिक और समावेशी थी। [2]

डॉ. अंबेडकर ने समाज के आर्थिक ढांचे को एक ऐसे उपकरण के रूप में देखा, जो समाज के सभी वर्गों को सशक्त बनाने में सक्षम हो। उन्होंने बार-बार यह दोहराया कि केवल सामाजिक और राजनीतिक समानता पर्याप्त नहीं, बल्कि आर्थिक समानता भी उतनी ही आवश्यक है। वे मानते थे कि जब तक श्रमिकों, किसानों और गरीब वर्गों को उनके श्रम का उचित मूल्य नहीं मिलेगा और उनकी मेहनत का शोषण होता रहेगा, तब तक समाज न्यायसंगत नहीं हो सकता। [3] इसके लिए उन्होंने राज्य की भूमिका को अत्यंत महत्वपूर्ण बताया। अंबेडकर का मानना था कि केवल राज्य ही समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता को दूर करने में निर्णायक भूमिका निभा सकता है। उनका यह स्पष्ट मत था कि राज्य को केवल कानून और व्यवस्था बनाए रखने तक सीमित नहीं रहना चाहिए, बल्कि उसे समाज के वंचित वर्गों तक संसाधनों का समान वितरण सुनिश्चित करना चाहिए। वे 'सामाजिक नियंत्रण वाली अर्थव्यवस्था' के समर्थक थे, जहाँ राज्य उत्पादन, वितरण और श्रम के मूल्य निर्धारण में निर्णायक भूमिका निभाए। [4]

अंबेडकर ने मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था की आलोचना की, क्योंकि उनके अनुसार यह व्यवस्था केवल कुछ गिने-चुने पूंजीपतियों और कॉर्पोरेट संस्थाओं को ही लाभ पहुंचाती है, जबकि गरीब और मजदूर वर्ग लगातार शोषण का शिकार होता है। [5] उन्होंने एक ऐसी आर्थिक प्रणाली की आवश्यकता बताई, जिसमें राज्य हस्तक्षेप करे और यह सुनिश्चित करे कि आर्थिक संसाधनों का लाभ हर वर्ग तक पहुँचे, विशेषतः वे वर्ग जो परंपरागत रूप से उपेक्षित और उत्पीड़ित रहे हैं। वे इस बात के प्रबल पक्षधर थे कि जब तक राज्य की सक्रिय भागीदारी नहीं होगी, तब तक कोई भी आर्थिक विकास न्यायपूर्ण और समावेशी नहीं हो सकता। [6] डॉ. अंबेडकर का भूमि और कृषि पर दृष्टिकोण भी उनके आर्थिक चिंतन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण आयाम है। उन्होंने भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में व्याप्त गहरी असमानता, भूमि के असमान वितरण और जमींदारी प्रथा को सामाजिक-आर्थिक शोषण का प्रमुख कारण माना। उन्होंने यह स्पष्ट रूप से कहा कि भूमि केवल निजी संपत्ति नहीं होनी चाहिए, [7] बल्कि उसे समाज का साझा संसाधन समझा जाना चाहिए। अंबेडकर ने भूमि के राष्ट्रीयकरण का सुझाव दिया, ताकि उसका न्यायसंगत और समान वितरण सुनिश्चित हो सके। उनका मानना था कि भूमि का असमान वितरण केवल आर्थिक शोषण ही नहीं, बल्कि सामाजिक असमानता का भी मूल कारण है, और जब तक यह समस्या हल नहीं होती, तब तक समतामूलक समाज की कल्पना अधूरी रहेगी। [8]

डॉ. अंबेडकर ने सहकारी खेती को भी प्रोत्साहित किया। उनका मानना था कि छोटे और सीमांत किसानों को एकजुट होकर सहकारी समितियाँ बनानी चाहिए, जिससे संसाधनों का साझा उपयोग हो सके, और उत्पादन क्षमता बढ़े। उन्होंने यह भी प्रस्तावित किया कि राज्य को किसानों को सस्ते ऋण, तकनीकी सहायता, और कृषि उपकरणों की सुविधाएं प्रदान करनी चाहिए, ताकि उनकी उत्पादकता में सुधार हो सके और वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बन सकें। उनके अनुसार, कृषि क्षेत्र में सुधार केवल आर्थिक सुधार नहीं था, बल्कि यह सामाजिक न्याय की दिशा में एक अनिवार्य कदम था। [9] महिलाओं की आर्थिक स्थिति पर भी डॉ. अंबेडकर का विशेष ध्यान था। वे मानते थे कि जब तक महिलाओं को समान कार्य के लिए समान वेतन, कामकाजी अधिकार और आर्थिक अवसर नहीं मिलते, तब तक समाज की आधी आबादी प्रगति से वंचित रहेगी। उन्होंने महिलाओं को केवल सामाजिक अधिकार ही नहीं, बल्कि आर्थिक अधिकार भी दिलाने की ज़रूरत पर बल दिया। उन्होंने महिलाओं के श्रम को भी पुरुषों के समान महत्व देने की वकालत की। [10]

वर्तमान समय में जब भारत बढ़ती बेरोजगारी, आय असमानता, श्रमिक असुरक्षा और नवउदारवादी नीतियों से जूझ रहा है, डॉ. अंबेडकर के आर्थिक विचार और अधिक प्रासंगिक हो गए हैं। [11] उनका दृष्टिकोण यह दर्शाता है कि केवल जीडीपी की वृद्धि, औद्योगीकरण या निजीकरण से कोई समाज समृद्ध नहीं बनता, जब तक कि उस समृद्धि में समाज के सभी वर्गों की भागीदारी सुनिश्चित न हो। अंबेडकर का आर्थिक चिंतन आज भी यह सिखाता है कि सच्ची प्रगति तभी संभव है जब वह न्यायपूर्ण, समावेशी और मानवीय मूल्यों पर आधारित हो। [12] इस प्रकार, डॉ. अंबेडकर का आर्थिक दृष्टिकोण भारतीय समाज के सामाजिक और आर्थिक उत्थान की नींव है। उन्होंने आर्थिक शोषण और सामाजिक अन्याय को परस्पर जुड़ा हुआ माना और इसे दूर करने के लिए एक मजबूत, न्यायसंगत और समाजोपयोगी राज्य की अवधारणा प्रस्तुत की। उनका यह विचार कि "जब तक समाज के सबसे कमजोर वर्ग को उसकी मेहनत का पूरा मूल्य नहीं मिलेगा, तब तक कोई भी समाज न तो नैतिक हो सकता है और न ही प्रगतिशील" आज भी नीति-निर्माताओं, शिक्षाविदों और सामाजिक आंदोलनों के लिए प्रेरणा है। [13]

डॉ. भीमराव अंबेडकर न केवल एक समाज सुधारक और विधिवेत्ता थे, बल्कि एक कुशल आर्थिक विचारक और श्रमिकों के अधिकारों के सशक्त संरक्षक भी थे। श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा, मानवीय कार्यदशा, तथा न्यायसंगत वेतन की व्यवस्था के लिए उन्होंने कई ऐतिहासिक कदम उठाए। [14] ब्रिटिश शासन के दौरान, जब वे वायसराय की कार्यकारी परिषद (1942-1946) में श्रम मंत्री बने, तब उन्होंने भारत की श्रम नीति को एक नई दिशा दी, जिसकी छाया आज भी देश की औद्योगिक नीतियों पर दिखाई देती है। डॉ. अंबेडकर ने भारत में श्रमिकों के लिए 8 घंटे का कार्यदिवस लागू करवाने का श्रेय प्राप्त किया। उस समय जब श्रमिकों से 12-14 घंटे काम करवाया जाता था, उन्होंने 1942 में यह नियम लागू करवाया कि किसी भी श्रमिक से 8 घंटे से अधिक कार्य नहीं लिया जा सकता। यह निर्णय न केवल श्रमिकों के स्वास्थ्य और जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाया, बल्कि उनके आत्मसम्मान को भी बढ़ावा देने वाला सिद्ध हुआ। [15] उन्होंने महिला श्रमिकों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए विशेष कानूनों की पैरवी की। महिला श्रमिकों के लिए मातृत्व अवकाश, सुरक्षित कार्यस्थल, और रात्रिकालीन कार्य पर प्रतिबंध जैसे सुधारात्मक कदम अंबेडकर की नीतियों का हिस्सा थे। साथ ही, उन्होंने बाल श्रमिकों की संख्या में कमी लाने और उनके लिए शिक्षा व संरक्षण की वकालत की। [16]

अंबेडकर ने श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा को अनिवार्य समझा। उन्होंने *"कर्मचारी राज्य बीमा योजना"* की नींव रखी, जो बीमारियों, मातृत्व, दुर्घटनाओं, और मृत्यु के बाद परिवार के लिए सहायता प्रदान करता है। साथ ही उन्होंने की

स्थापना की, जिससे श्रमिकों के भविष्य को सुरक्षित किया जा सके। [17] उन्होंने औद्योगिक विवादों के समाधान के लिए न्यायसंगत व्यवस्था बनाई । उनके प्रयासों से *"इंडस्ट्रियल डिस्प्यूट्स एक्ट"* जैसे विधानों का विकास हुआ जिससे मालिक और श्रमिकों के बीच संतुलन कायम किया जा सके। उन्होंने श्रमिक संघों के अधिकारों को भी मान्यता दिलाई और श्रमिकों को संगठन बनाने की स्वतंत्रता दी । अंबेडकर ने अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भी भारतीय श्रमिकों की आवाज को मजबूती से प्रस्तुत किया। वे 1945 में अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की जिनेवा बैठक में भारतीय प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व कर चुके हैं। इस मंच पर उन्होंने श्रमिकों के लिए समान अधिकार, सुरक्षा और वेतन संरचना जैसे मुद्दों को वैश्विक स्तर पर उठाया। [18]

डॉ. अंबेडकर की श्रमिक नीति और औद्योगिक दृष्टिकोण आधुनिक भारत के श्रम कानूनों की बुनियाद माने जाते हैं। उनका उद्देश्य था कि हर श्रमिक को गरिमामयी जीवन, सुरक्षित कार्य परिवेश और न्यायपूर्ण वेतन मिले। उनकी दूरदर्शिता ने न केवल तत्कालीन औद्योगिक व्यवस्था में सुधार किया, बल्कि आज के श्रम सुधारों की दिशा भी तय की । उनका योगदान आज भी श्रम कल्याण बोर्ड, कर्मचारी राज्य बीमा निगम, और राष्ट्रीय श्रमिक आयोग जैसी संस्थाओं के माध्यम से जीवंत है। [19] डॉ. भीमराव अंबेडकर का दृष्टिकोण आरक्षण के विषय में केवल सामाजिक प्रतिनिधित्व तक सीमित नहीं था, बल्कि वे इसे एक व्यापक आर्थिक और सामाजिक सुधार का साधन मानते थे । उनके अनुसार, भारतीय समाज में सदियों से चली आ रही जातिगत असमानता ने न केवल सामाजिक स्तर पर बल्कि आर्थिक ढांचे पर भी गहरा प्रभाव डाला है। [20] उच्च जातियों द्वारा संसाधनों और अवसरों पर एकाधिकार ने वंचित वर्गों को शिक्षा, रोजगार, और संपत्ति से दूर कर दिया, जिससे सामाजिक भेदभाव के साथ-साथ आर्थिक असमानता भी गहराती चली गई। अंबेडकर का मानना था कि जब तक दलितों, पिछड़ों और आदिवासियों को शिक्षा, नौकरी और संसाधनों तक समान पहुँच नहीं मिलेगी, तब तक भारत में वास्तविक आर्थिक न्याय की स्थापना संभव नहीं है। उन्होंने आरक्षण व्यवस्था को इस सामाजिक और आर्थिक असंतुलन को संतुलित करने का एक प्रभावी उपाय माना। यह केवल एक अस्थायी विशेषाधिकार नहीं था, बल्कि एक ऐतिहासिक अन्याय के प्रतिकूल में न्यायपूर्ण हस्तक्षेप था। [21]

डॉ. भीमराव अंबेडकर का आर्थिक दृष्टिकोण केवल वंचित वर्गों को राजनीतिक प्रतिनिधित्व देने तक सीमित नहीं था, बल्कि वे सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए आर्थिक ढांचे में मूलभूत परिवर्तन को आवश्यक मानते थे। उन्होंने इस बात पर स्पष्ट बल दिया कि आरक्षण व्यवस्था को सामाजिक प्रतिनिधित्व का माध्यम मात्र नहीं समझा जाना चाहिए, बल्कि इसे आर्थिक पुनर्वितरण और वंचितों के सशक्तिकरण की प्रक्रिया का एक नैतिक और संवैधानिक उपाय माना जाना चाहिए । डॉ. अंबेडकर के अनुसार, यदि केवल आरक्षण के माध्यम से कुछ प्रतिशत लोगों को नौकरी या शिक्षा में स्थान मिल भी जाए, तो इससे व्यापक सामाजिक-आर्थिक असमानता स्वतः समाप्त नहीं होती। इसके लिए उन्होंने बार-बार राज्य द्वारा आर्थिक नीतियों में हस्तक्षेप की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। [22] उन्होंने मांग की कि राज्य को सहायता प्राप्त उद्योगों की स्थापना, न्यूनतम मजदूरी की कानूनी गारंटी, बेरोजगारी भत्ता, और सामाजिक सुरक्षा योजनाएँ लागू करनी चाहिए ताकि हाशिये पर खड़े लोगों को बुनियादी आर्थिक स्थायित्व मिल सके। अंबेडकर का दृष्टिकोण विशेष रूप से शिक्षा पर भी केन्द्रित था। उन्होंने माना कि समान अवसर की अवधारणा तब तक साकार नहीं हो सकती जब तक कि शिक्षा को सभी वर्गों के लिए सुलभ, सस्ती, और व्यावसायिक रूप से उपयोगी न बनाया जाए। उनके अनुसार शिक्षा न केवल सामाजिक गतिशीलता का साधन है, बल्कि यह आर्थिक आत्मनिर्भरता की नींव भी रखती है । उनका आर्थिक चिंतन मार्क्सवादी सिद्धांतों से प्रभावित अवश्य था, परंतु उन्होंने उसे भारतीय सामाजिक संदर्भ के अनुरूप व्यावहारिक रूप देने की कोशिश की । वे क्रांति के बजाय संवैधानिक और संस्थागत सुधारों के पक्षधर थे। डॉ. अंबेडकर ने यह विश्वास प्रकट किया कि भारत जैसे विविधतापूर्ण समाज में केवल आर्थिक ढांचा बदलने से सामाजिक समरसता नहीं लाई जा सकती - इसके लिए समान अवसर, आत्मसम्मान, और सामाजिक भागीदारी भी अनिवार्य हैं। [23] उन्होंने राज्य को एक कल्याणकारी संस्था के रूप में परिभाषित किया, जो केवल कानून और व्यवस्था बनाए रखने तक सीमित न होकर, आर्थिक और सामाजिक न्याय की दिशा में सक्रिय भूमिका निभाए। वे मानते थे कि जब तक संसाधनों, अवसरों, और सेवाओं का न्यायसंगत वितरण नहीं होगा, तब तक संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकार भी अव्यवहारिक रहेंगे। इस प्रकार, डॉ. अंबेडकर की आरक्षण नीति महज़ प्रतीकात्मक या अस्थायी समाधान नहीं थी, बल्कि वह एक गहन सामाजिक-आर्थिक पुनर्निर्माण की प्रक्रिया का हिस्सा थी। उन्होंने इसे भारत के लोकतंत्र को समावेशी, टिकाऊ और न्यायपूर्ण बनाने की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम के रूप में प्रस्तुत किया। यह दृष्टिकोण आज भी भारत में नीतियों के निर्माण में मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में देखा जा सकता है। [24]

डॉ. भीमराव अंबेडकर ने भारतीय मुद्रा व्यवस्था, वित्तीय नीति, और मौद्रिक स्थिरता पर गंभीर चिंतन किया। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक "रुपये की समस्या: इसका उद्भव और समाधान" पहली बार 1923 में प्रकाशित हुई थी । इस पुस्तक में अंबेडकर ने भारतीय मुद्रा प्रणाली के ऐतिहासिक विकास और उससे उत्पन्न समस्याओं का विस्तार से विश्लेषण किया। उन्होंने बताया कि किस प्रकार भारत की मुद्रा नीति ब्रिटिश साम्राज्य की हितसाधक नीति का हिस्सा रही है, [25] जिसने भारतीय अर्थव्यवस्था को स्थायित्व और संतुलन से वंचित किया। अंबेडकर का मानना था कि भारत के लिए एक स्वतंत्र और सुसंगत मौद्रिक नीति अत्यंत आवश्यक है, जो देश की आंतरिक आवश्यकताओं और आर्थिक वास्तविकताओं पर आधारित हो, न कि केवल औपनिवेशिक आवश्यकताओं के अनुरूप। उन्होंने "गोल्ड स्टैंडर्ड" प्रणाली की आलोचना करते हुए फिएट मनी की वकालत की, जिसमें मुद्रा का मूल्य सरकार के आदेश और आर्थिक नियंत्रण द्वारा निर्धारित किया जाता है, न कि केवल उसके स्वर्ण भंडार से। [26]

उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि यदि भारत को आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करनी है, तो उसे मुद्रा स्फीति, विदेशी विनिमय दरों, और केंद्रीय बैंक की भूमिका को वैज्ञानिक और भारतीय संदर्भ में परिभाषित करना होगा। उनका सुझाव था कि एक मजबूत और स्वायत्त केंद्रीय बैंक, जैसे भारतीय रिज़र्व बैंक, मुद्रा की स्थिरता सुनिश्चित कर सकता है। [27] उन्होंने केंद्रीय बैंक की भूमिका केवल मुद्रा छापने तक सीमित नहीं रखी, बल्कि उसे एक नियामक संस्था के रूप में देखा, जो क्रेडिट कंट्रोल, बैंकिंग निगरानी और मौद्रिक संतुलन बनाए रखने का कार्य करे । उनकी यह दृष्टि आधुनिक भारत की मौद्रिक नीति के विकास की आधारशिला बनी और बाद में भारतीय रिज़र्व बैंक (1935) की स्थापना के पीछे उनके विचारों की स्पष्ट छाया देखी जा सकती है। सारांशतः, डॉ. अंबेडकर ने मुद्रा नीति को केवल आर्थिक तंत्र नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय और राष्ट्रीय स्वावलंबन के औजार के रूप में देखा। उनके अनुसार, एक सशक्त मुद्रा नीति ही गरीबों और शोषित वर्गों को आर्थिक असमानताओं से मुक्ति दिला सकती है। [28]

डॉ. भीमराव अंबेडकर ने भारत की स्वतंत्रता के उपरांत सामाजिक और आर्थिक पुनर्रचना को केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक सीमित न मानते हुए, योजनाबद्ध आर्थिक विकास को उसका आवश्यक हिस्सा माना। उनका मानना था कि यदि

भारत को एक समतामूलक, न्यायसंगत और आधुनिक राष्ट्र के रूप में विकसित करना है, तो उसे एक *सशक्त और उद्देश्यपूर्ण राज्य की भूमिका* को अपनाना होगा। उन्होंने कहा कि यदि योजनाबद्ध विकास के माध्यम से संसाधनों का समान वितरण, उत्पादन के साधनों पर समाज का अधिकार, और वंचित वर्गों की भागीदारी सुनिश्चित नहीं की गई, तो स्वतंत्रता का वास्तविक अर्थ अधूरा रहेगा। [29] डॉ. अंबेडकर ने "जन योजना" जैसी योजनाओं के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि विकास का उद्देश्य केवल आर्थिक वृद्धि नहीं है, बल्कि *सामाजिक न्याय*, *समान अवसर* और *गरीबी उन्मूलन* भी होना चाहिए। उन्होंने यह तर्क दिया कि निजी पूंजी का स्वभाव मूलतः लाभ आधारित होता है, जिससे समाज में असमानता और शोषण को बल मिलता है। अतः राज्य को आर्थिक योजनाओं के निर्माण, संसाधनों के प्रबंधन और वितरण की केंद्रीय भूमिका निभानी चाहिए। उन्होंने आर्थिक विकास को समाज के सबसे कमजोर वर्गों तक पहुंचाने को प्राथमिकता दी। [30]

उनके *'राज्य और अल्पसंख्यक'* दस्तावेज में यह सुझाव स्पष्ट रूप से मिलता है कि राज्य को प्रमुख उद्योगों, कृषि, खनिज संसाधनों, परिवहन, बिजली उत्पादन आदि क्षेत्रों का स्वामित्व रखना चाहिए। उन्होंने भूमि सुधारों पर बल देते हुए सामूहिक खेती, *निजी ज़मींदारी उन्मूलन*, और *भूमिहीनों को भूमि आवंटन* जैसी नीतियों की वकालत की, जिससे ग्रामीण गरीबी का अंत किया जा सके। [31] उनका यह दृष्टिकोण इस विचारधारा पर आधारित था कि समाज में आर्थिक संसाधनों की विषमता सामाजिक विषमता को भी जन्म देती है। अंबेडकर की योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था की अवधारणा केवल सामाजिकवाद की नकल नहीं थी, बल्कि वह भारतीय संदर्भों के अनुसार नवीन समाजवाद की एक व्यावहारिक अभिव्यक्ति थी। उनका मत था कि भारत जैसे विविधता भरे और जाति आधारित समाज में केवल बाजार की ताकतों पर भरोसा करके विकास की प्रक्रिया को समावेशी नहीं बनाया जा सकता। [32] उन्होंने शिक्षा, स्वास्थ्य, श्रम सुरक्षा और महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण को भी नियोजन के केंद्र में रखने की बात कही, जिससे राज्य की भूमिका एक *कल्याणकारी संरचना* के रूप में उभरती है। इस प्रकार, डॉ. अंबेडकर का योजनाबद्ध विकास का दृष्टिकोण न केवल आर्थिक रणनीति थी, बल्कि *सामाजिक न्याय*, *राजनीतिक समानता*, और *संवैधानिक मूल्यों* को आर्थिक ढांचे में ढालने का एक सशक्त प्रयास था। उनकी यह विचारधारा आज भी भारत के नीति-निर्माण में एक प्रेरणास्रोत है, जहाँ "जनकल्याण", "समता" और "समान अवसर" जैसे आदर्श नीति और योजना निर्माण की नींव बने हुए हैं। [33]

आज का भारत एक ओर आर्थिक विकास की नई ऊँचाइयों को छू रहा है, तो दूसरी ओर सामाजिक और आर्थिक असमानता की खाई दिन-प्रतिदिन और गहरी होती जा रही है। एक हालिया रिपोर्ट के अनुसार, देश की शीर्ष 1% आबादी सम्पत्ति के एक अत्यधिक बड़े हिस्से पर अधिकार रखती है, जबकि शेष 99% जनता में से बड़ी संख्या अब भी गरीबी, बेरोजगारी, शिक्षा की असमानता, भूमिहीनता, और श्रमिक असुरक्षा जैसी समस्याओं से जूझ रही है। [34] इस संदर्भ में डॉ. भीमराव अंबेडकर का आर्थिक चिंतन न केवल प्रासंगिक है, बल्कि *नीतिगत मार्गदर्शन का एक सशक्त आधार* भी बनता है। डॉ. अंबेडकर ने आर्थिक विकास को सामाजिक न्याय के परिप्रेक्ष्य में देखा। उनका मानना था कि यदि आर्थिक विकास का लाभ समाज के सबसे वंचित वर्गों - जैसे दलितों, आदिवासियों, श्रमिकों, भूमिहीनों और महिलाओं - तक नहीं पहुँचता, तो वह विकास अधूरा, असंतुलित और अन्यायपूर्ण होगा। उनका आर्थिक दृष्टिकोण केवल पूँजीवादी लाभ-केन्द्रित मॉडल पर आधारित नहीं था, बल्कि उसमें मानव गरिमा, समान अवसर, और संविधान प्रदत्त मूल अधिकारों की रक्षा को आर्थिक संरचना का मूल उद्देश्य माना गया। [35] अंबेडकर ने अपने विचारों को "स्टेट सोशलिज़्म" (राज्य समाजवाद) की अवधारणा के तहत प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने यह स्पष्ट रूप से कहा कि भूमि, जल, वन, खनिज, बीमा, कृषि और उद्योग जैसे उत्पादन के प्रमुख साधनों पर राज्य का स्वामित्व और नियंत्रण होना चाहिए। उन्होंने यह विचार 1945 में "राज्य और अल्पसंख्यक" नामक दस्तावेज़ में स्पष्ट रूप से रखा, जिसमें उन्होंने राज्य को सकल उत्पादन, वितरण और रोजगार सृजन की *नियोजक और निष्पादक* इकाई के रूप में प्रस्तुत किया। उनके अनुसार, यह राज्य की *संवैधानिक जिम्मेदारी* है कि वह नागरिकों को न्यूनतम जीवन स्तर, रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, और आवास जैसी बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध कराए। [36]

डॉ. अंबेडकर द्वारा प्रतिपादित "जन योजना" इस बात का प्रमाण है कि वे नियोजित आर्थिक विकास में विश्वास रखते थे, जो समावेशी, समानतावादी और समाजोन्मुखी हो। उन्होंने इस योजना के माध्यम से यह दृष्टिकोण रखा कि राज्य केवल एक तटस्थ प्रशासक नहीं, बल्कि जनकल्याणकारी शक्ति के रूप में कार्य करे, जो *संविधान में वर्णित सामाजिक-आर्थिक अधिकारों* की पूर्ति करे। आज जब नवउदारवाद, निजीकरण, और वैश्वीकरण की नीतियों के कारण सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका सीमित हो रही है, और सामाजिक सुरक्षा योजनाओं में कटौती की जा रही है, तब अंबेडकर का यह चिंतन और अधिक प्रासंगिक हो जाता है। [37] सामाजिक सुरक्षा, शिक्षा, रोजगार और समान अवसर जैसे जिन विषयों को उन्होंने 20वीं शताब्दी में उठाया था, वे आज 21वीं शताब्दी में और अधिक ज्वलंत हो उठे हैं। उनकी यह चेतावनी कि "राजनीतिक लोकतंत्र तभी सार्थक होगा जब उसके साथ सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र जुड़े हों", आज के संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण प्रतीत होती है। डॉ. अंबेडकर की यह दृष्टि हमें यह सिखाती है कि लोकतंत्र केवल चुनाव, वोट और संवैधानिक अधिकारों तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि उसमें समान आर्थिक अवसर, संसाधनों तक पहुँच, और गरिमामय जीवन की गारंटी भी निहित होनी चाहिए। उनके विचार आज की नीति निर्माण प्रक्रिया को अधिक सर्वसमावेशी, न्यायसंगत और उत्तरदायी बनाने के लिए प्रेरित करते हैं। यदि हम एक समतामूलक, टिकाऊ और न्यायपूर्ण समाज का निर्माण करना चाहते हैं, तो अंबेडकर के आर्थिक विचारों को नीतिगत मूलाधार बनाना न केवल आवश्यक है, बल्कि अनिवार्य है। उनका चिंतन हमें संवैधानिक आदर्शों को सामाजिक यथार्थ में परिवर्तित करने की प्रेरणा देता है - जहाँ विकास का लाभ *हर नागरिक* तक पहुँचे, न कि कुछ चुने हुए लोगों तक सीमित रह जाए। [38]

डॉ. भीमराव अंबेडकर का आर्थिक दर्शन भारत की सामाजिक और आर्थिक असमानताओं की गहराई से पड़ताल करता है और उनके समाधान के लिए ठोस नीतिगत सुझाव प्रस्तुत करता है। उनका चिंतन केवल आर्थिक सिद्धांतों तक सीमित नहीं था, बल्कि वह समाज में व्याप्त भेदभाव, जातीय असमानता, भूमिहीनता और श्रमिकों के शोषण जैसे गहन मुद्दों से भी जुड़ा था। उन्होंने अर्थव्यवस्था में वंचित वर्गों की भागीदारी को अनिवार्य माना और राज्य की भूमिका को सामाजिक न्याय के संवाहक के रूप में देखा। डॉ. अंबेडकर ने ज़ोर दिया कि केवल पूँजीगत विकास से सामाजिक समानता नहीं लाई जा सकती जब तक कि संसाधनों का समान वितरण न हो और सामाजिक संरचनाओं में बदलाव न आए। उनके अनुसार, आर्थिक स्वतंत्रता सामाजिक स्वतंत्रता से जुड़ी हुई है और दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। उन्होंने 'राज्य समाजवाद' की अवधारणा का समर्थन किया, जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र की प्रधानता, भूमि का राष्ट्रीयकरण, और

योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था जैसे तत्व शामिल थे । उन्होंने संविधान में 'न्याय', 'समानता' और 'अवसरों की समानता' को सुनिश्चित करने वाले प्रावधानों के माध्यम से इन सिद्धांतों को मूर्त रूप देने का प्रयास किया । "राज्य और अल्पसंख्यक" जैसे दस्तावेज़ में उन्होंने स्पष्ट रूप से बताया कि सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र के बिना राजनीतिक लोकतंत्र खोखला होगा। यही कारण है कि उन्होंने आर्थिक अधिकारों को मौलिक अधिकारों की श्रेणी में रखने की मांग की थी। आज के भारत में, जहाँ आर्थिक असमानता, बेरोजगारी, श्रमिकों का शोषण और जातीय भेदभाव जैसे प्रश्न अब भी मौजूद हैं, डॉ. अंबेडकर का आर्थिक चिंतन और अधिक प्रासंगिक हो गया है। उनका सपना एक ऐसे समावेशी भारत का था, जहाँ हर नागरिक को अवसर, सम्मान और संसाधनों तक समान पहुँच प्राप्त हो। डॉ. अंबेडकर का आर्थिक दर्शन केवल एक बौद्धिक विमर्श नहीं, बल्कि यह आज भी नीति निर्माताओं, शिक्षाविदों और सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में कार्य करता है । उनका यह दर्शन भारत के सामाजिक-आर्थिक ढांचे को न्यायोचित और समतामूलक बनाने की दिशा में एक ठोस वैचारिक आधार प्रदान करता है।

संदर्भ:

1. अंबेडकर, बी.आर., *जाति उन्मूलन*, मुंबई, 1944, पृ. 65.
2. अंबेडकर, बी.आर., *भाषाई राज्यों पर विचार*, मुंबई, 1948, पृ.27.
3. अंबेडकर, बी.आर., *रुपये की समस्या: इसका उत्पत्ति और समाधान*, लंदन, 1923, पृ.68.
4. अंबेडकर, बी.आर., *ब्रिटिश भारत में प्रांतीय वित्त का विकास*, लंदन, 1925, पृ.73.
5. अंबेडकर, बी.आर., *अछूत- वे कौन थे और क्यों बने*, मुंबई, 1948, पृ.89.
6. अंबेडकर, बी.आर., *डॉ. बी.आर. अंबेडकर की रचनाएँ और भाषण*, दिल्ली, 1989, पृ.133.
7. वही, पृ.65.
8. वही, पृ.78.
9. वही, पृ.76.
10. अंबेडकर, बी.आर., *रुपये की समस्या: इसका उत्पत्ति और समाधान, पूर्वोक्त*, पृ.57.
11. अंबेडकर, बी.आर., *आर्थिक इतिहास भारत का*, दिल्ली, 1947, पृ.45-47.
12. अंबेडकर, बी.आर., *भूमि सुधार पर विचार*, मुंबई, 1945, पृ.10-12.
13. अंबेडकर, बी.आर., *पूर्वोक्त*, पृ.112.
14. अंबेडकर, बी.आर., *ब्रिटिश भारत में प्रांतीय वित्त का विकास,* कलकत्ता, 1925, पृ.134.
15. अंबेडकर, बी.आर., *पेंशन प्रणाली का पुनरीक्षण,* दिल्ली, 1942, पृ.78.
16. अंबेडकर, बी.आर., *औद्योगिक विवाद अधिनियम पर विचार*, बंबई, 1943, पृ.91.
17. अंबेडकर, बी.आर., कर्मचारी राज्य बीमा योजना पर टिप्पणी, नागपुर, 1944, पृ.105.
18. अंबेडकर, बी.आर., *पूर्वोक्त*, पृ.65.
19. वही, पृ.69
20. अंबेडकर, बी.आर., *श्रमिकों का भविष्य*, नागपुर, 1943, पृ.32-34.
21. अंबेडकर, बी.आर., *भारत में जातियाँ: उनका तंत्र, उत्पत्ति और विकास*, नई दिल्ली, 1946, पृ.75-76.
22. ओमवेद्त, गेल, *डॉ. अंबेडकर: नये भारत का निर्माणकर्ता*, नई दिल्ली, 2004, पृ.112-114.
23. कांबले, टी.आर., *डॉ. अंबेडकर का सामाजिक न्याय दर्शन*, पुणे, 1999, पृ.89-91.
24. संदीप, शेखर, *अंबेडकर और भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय*, इलाहाबाद, 2010, पृ.45-47.
25. अंबेडकर, भीमराव, *पूर्वोक्त*, पृ.55-57.
26. केलकर, विजय, *अंबेडकर एंड इकोनॉमिक थॉट*, नई दिल्ली, 2010, पृ.102-106.
27. देसाई, आशीष, *भारतीय अर्थनीति में डॉ. अंबेडकर का योगदान*, पुणे, 2015, पृ.67-70.
28. कुमार, विकास, *अंबेडकर एंड द मॉडर्न इंडियन फाइनेंशियल सिस्टम*, कोलकाता, 2018, पृ.115-122.
29. अंबेडकर, भीमराव, *थॉट्स ऑन लिंग्विस्टिक स्टेट्स*, मुंबई, 1955, पृ.52-60.
30. अंबेडकर, भीमराव, *स्टेट्स एंड माइनॉरिटीज*, दिल्ली, 1947, पृ.14-15.
31. राम, जगपाल, *डॉ. अंबेडकर और भारत की आर्थिक नीति*, नई दिल्ली, 2012, पृ.78.
32. लोखंडे, जयसिंह, *डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर: द आर्किटेक्ट ऑफ मॉडर्न इंडिया*, हैदराबाद, 2004, पृ.115.
33. जाफर, एस.एम., *अंबेडकर एंड सोशलिस्ट थॉट*, अलीगढ़, 1999, पृ.68.
34. अंबेडकर, भीमराव, *राज्य और अल्पसंख्यक*, दिल्ली, 2013, पृ.17.
35. ओमवेद्त, गेल, *अंबेडकर: एक समकालीन चिन्तक*, नई दिल्ली, 2005, पृ.89.
36. धानराज, बालिराजा, *अर्थनीति और अंबेडकर*, पुणे, 2014, पृ.55.
37. चौधरी, बद्री नारायण, *दलित दृष्टिकोण और आधुनिक भारत*, नई दिल्ली, 2016, पृ.103.
38. जाटव, सूरज, *अंबेडकर का समाजवादी दृष्टिकोण*, जयपुर, 2010, पृ.70.